

६

अशोक का धम्म (कारण,अर्थ, प्रकृति एवं उद्देश्य)

महात्मा बुद्ध का कथन है कि “मैने नहीं कहा कि अर्हत मृत्यु के बाद विद्यमान रहता है, और मैने नहीं कहा है कि वह विद्यमान नहीं रहता है.....क्योंकि.....यह शिक्षा का विषय नहीं है, और न ही सर्वोपरि ज्ञान के रूप में उपस्थित होता है”^१। बुद्ध की मान्यता थी कि किसी रोग या समस्या के कारण के बारे में वाद-विवाद में समय व्यर्थ करने से अच्छा है कि उसके उपचार का प्रयास तुरंत किया जाय। इसका सीधा सा तात्पर्य यह है कि जो चीज़ हमारे लिए उपयोगी नहीं उसमें पड़कर हमें समय नष्ट नहीं करना चाहिये। मेरे विचार में अशोक के धम्म के कारणों पर ज़रूरत से ज़्यादा ध्यान देने के कारण हम उसकी अत्यन्त उपयोगी और मानवतापूर्ण शिक्षा की उपयोगिता को पूर्णतः समझने में असफल रहे। एक इतिहासकार का यह कर्तव्य होता है कि वह पाठको के सामने एक तथ्यपरक, सुस्पष्ट, क्रमबद्ध, और सही इतिहास प्रस्तुत करने के साथ साथ उसकी उपयोगिता को भी सामने रखे किन्तु इतिहासकारों ने

^१.- बाशम ए.एल.-अद्भुत भारत, पृ.१६६-६७।

पाठको के सामने अशोक के धम्म का एक तथ्यपरक इतिहास तो प्रस्तुत कर दिया किन्तु उसकी उपयोगिता एवं उसकी प्रासंगिकता समझाने में असफल रहे जबकि आज के इस दौर में धम्म की शिक्षा उस युग से कहीं अधिक उपयोगी और प्रासंगिक है। इसीलिए मेरी इच्छा व्यर्थ के ववादों में न पड़ने की है किन्तु फिर भी एक परंपरा को निभाते हुए मैं इसके कारणों पर कुछ प्रकाश डाल रहा हूँ।

मैं अशोक में एक ऐसे अद्वितीय, विचारवान, आध्यात्मिक, और व्यवहारिक सम्राट को देखता हूँ जिसने अपने समय का वास्तविक सदुपयोग किया। निःसंदेह उस पर कलिंग युद्ध का काफी प्रभाव पड़ा था और माना जाता है कि इसी युद्ध के बाद से उसने बौद्ध मत को अपना लिया और सार्वभौमिक कल्याण हेतु निरंतर प्रयासरतू होगया। माना जाता है कि कलिंग युद्ध की विभीषिका से वह इतना द्रवित हो गया कि उसने फिर तलवार को कभी न उठाने का प्रण किया। किन्तु मेरे विचार में अशोक ने कलिंग युद्ध से पहले भी काफी युद्ध किये होंगे एवं कोई भी युद्ध चाहे वह छोटा हो या बड़ा उसमें हिंसा, संहार, और विनाश जैसी चीज़ें तो होती ही हैं। ऐसे में अशोक ने कलिंग युद्ध के बाद ही धम्म विजय का मार्ग क्यों अपनाया उससे पहले क्यों नहीं। कहीं इसलिए तो नहीं की उसके बाद कोई विशेष क्षेत्र जीतने को शेष ही नहीं रह गया था।

‘अशोक स्वप्नदर्शी नहीं था। न वह ऐसा पैगम्बर था जिसने बौद्ध धर्म विषयक अथवा किसी और तरह की सम्बोधि प्राप्त की थी, न ही हम

इस मत से सहमत हैं कि अशोक के विचार समय से बहुत आगे थे और उसकी असफलता का कारण उसकी असामयिक अभिव्यक्ति थी। अगर हम अशोक का अध्ययन, मात्र एकाकी घटना के रूप में न कर, उस समय की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में करें तो उसकी 'धम्म' नीति के कारण और प्रयोजन सहज हो जायेंगे'^२। रोमिला थापर जी का कहना सही है कि कोई भी अपने समय से आगे नहीं होता एवं यह प्रकृति का एक कठोर नियम है जिसके दायरे में सभी प्राणी आते हैं और निःसंदेह अशोक भी। कार्य कारण वाद के अनुसार प्रत्येक कार्य का कोई न कोई कारण अवश्य होता है और इस आधार पर अशोक के धम्म का भी कोई न कोई कारण अवश्य होगा और निश्चित रूप से यह उस काल की परिस्थितियों में विद्यमान था।

अकसर शायद सदैव ही अशोक को बौद्ध धर्म के एक महान उपासक के रूप में देखा जाता है एवं माना जाता है कि इससे पहले वह ब्राह्मण या वैदिक या फिर ऐसा भी माना जाता है कि वह शैव धर्म को मानता था^३। मेरे विचार में मौर्य काल जो कि काफी प्राचीन समय है में धर्म के इन रूपों को अलग अलग करके देखना साम्प्रदायिक और संकीर्ण विचारधारा का द्योतक है। यदि हम मनु एवं याज्ञवल्क्य द्वारा उल्लिखित धर्म के लक्षणों जिसका मैंने आगे उल्लेख किया है, तथा बुद्ध की शिक्षाओं की तुलना करें तो हमें इनमें कोई अंतर

^२.- थापर रोमिला- अशोक और मौर्य साम्राज्य का पतन, पृ.१३६।

^३.- झा और श्रीमाली- प्राचीन भारत का इतिहास, पृ.१८१।

नज़र नहीं आयेगा एवं ये तीनों एक समान नज़र आयेंगे। मैं ये नहीं कहता की तथाकथित वैदिक धर्म और बौद्ध धर्म में कोई अंतर नहीं, अंतर अवश्य है और वह है कर्मकाण्डों का। वैदिक यज्ञों में पशु बलि एक महत्वपूर्ण कृत्य था जबकि बुद्ध ने इसका विरोध किया। 'आवश्यकता ही अविष्कार की जननी होती है' ये एक वैज्ञानिक तथ्य है जो मनुष्यों पर निसंदेह लागू भी होता है। हो सकता है कि वैदिक काल में प्रारम्भ में मानवीय जनसंख्या जानवरों की संख्या के मुकाबले काफी कम रही होगी एवं चारों ओर जंगल ही जंगल होगा। इसी कारण उस काल में आग की सहायता से जंगल को जलाकर कृषि एवं निवास हेतु भूमि तैयार की जाती होगी एवं पशु बलि देकर मानव और पशु संख्या में सामंजस्य लाया जाता होगा। किन्तु बाद में भी काफी समय तक इस प्रथा का प्रचलन अनावश्यक रूप से कुछ रूढ़ीवादी तत्वों द्वारा अपने वर्चस्व को कायम रखने के लिए जारी रखा गया तथापि लोग इन सब से तृप्त हो चुके थे। ऐसे में महात्मा बुद्ध ने इसका विरोध किया क्योंकि वे जान चुके थे कि अब विकास हेतु पशुबलि की नहीं बल्कि पशु सहयोग की आवश्यकता है। इसप्रकार मेरे विचार से महात्मा बुद्ध कोई दिव्य शक्ति या ईश्वर नहीं बल्कि एक महापुरुष थे जिन्होंने लोगों को इनके समय से अवगत कराया व उसके अनुसार आचरण करने का उपदेश दिया। उन्होंने कभी नहीं कहा कि वे ईश्वर या ईश्वर का अवतार हैं न ही इन्होंने कभी ये कहा कि वे किसी नये धर्म की स्थापना कर रहे हैं, ये तो हम आप और हम जैसे ही लोग हैं जिन्होंने नये नये धर्म सम्प्रदाय और वर्ग खड़े

कर दिये। यही बात मैं अशोक के लिये कहना चाहूँगा कि उसने भी अपने समय को समझा होगा, उसने लोगों में होते हुये नैतिक पतन को देखा होगा, उसने अकारण होती हुई पशुबलि देखी होगी, उसने बढ़ती हुई हिंसा को महसूस किया होगा, उसने गिरती हुई मानवता को देखा होगा। इसीलिए उसके धम्म में हमें कोई ईश्वर या कोई कर्मकाण्ड नहीं दिखते बल्कि दिखता है तो अहिंसा, सत्य, पवित्रता, माता-पिता, गुरुजनों की सेवा, पृकृति प्रेम आदि

थापर महोदया अशोक के धम्म की उदारता को उसके पूर्वजों की देन मानती हैं। यद्यपि चन्द्रगुप्त ने जैन धर्म अपना लिया हो तथापि उसके दरबार में जैन मुनियों के साथ साथ आजीवक, बौद्ध, और ब्राह्मण भी मौजूद रहते थे एवं यही स्थिति बिन्दुसार की भी थी^४। इनके विदेशों के साथ भी सम्बन्ध अच्छे थे एवं राजदूतों का भी आदान प्रदान होता था। यहाँ तक की ऐसा माना जाता है कि अशोक में तो संभवतः विदेशी रक्त भी था^५। इसप्रकार की मिलीजुली संस्कृति ने अशोक में एक उदारवादी दृष्टिकोण पैदा करने में महत्वपूर्ण भूमिका अवश्य ही निभाई होगी। और हो सकता है कि सैकड़ों वर्षों से ब्राह्मण धर्म में चली आ रही बलि प्रथा के दुष्परिणामों ने अशोक को बलिप्रथा का विरोध करने पर मजबूर किया हो। माना जाता है कि 'चन्द्रगुप्त के समय में मगध में

^४.- झा और श्रीमाली-प्राचीन भारत का इतिहास, पृ.१७८

^५.- थापर रोमिला-अशोक और मौर्य साम्राज्य का पतन, पृ.२०, एवं पाण्डेय वी. सी-प्राचीन भारत का राजनैतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास, पृ-४०१

१२ वर्ष का अकाल पड़ा था^६ जो कि संभवतः प्रकृति के निरंतर हो रहें विनाश का परिणाम हो और शायद इसीलिए अशोक के मन में प्रकृति के प्रति अगाध प्रेम दिखता है।

“ अशोक के शिलालेखों में धम्म की जो बातें दी गयी हैं उनसे स्पष्ट होता है कि वे पूर्ण रूप से बौद्ध ग्रंथों से ली गयी हैं। ये बौद्ध ग्रंथ हैं-: दीघनिकाय के लक्खणवती सुत्त, चक्कवती सीहनाद सुत्त, राहुलोवाद सुत्त और धम्मपद। इन ग्रंथों में वर्णित चक्रवर्ती धर्मराज के आदर्शों से प्रेरित होकर ही अशोक ने धम्म विजय के आदर्श को अपनाया होगा। लक्खणसुत्त और चक्कवती सीहनाद सुत्त में धर्मयुक्त चक्रवर्ती सम्राट के विषय में कहा गया है कि वह भौतिक और आध्यात्मिक कल्याण के लिए प्रयत्नशील रहता है। ऐसा राजा विलय से नहीं अपितु धम्म से विजयी होता है। वह तलवार की बजाय धम्म से विजय प्राप्त करता है। वह लोगों को अहिंसा का उपदेश देता है। अशोक ने जो धम्म की परिभाषा दी वह ‘राहुलोवाद सुत्त’ से ली गयी है। इस सुत्त को गेहविजय भी कहा जाता है अर्थात् ग्रहस्थों के लिए अनुशासन ग्रंथ। उपासक के लिए परम उद्देश्य स्वर्ग प्राप्त करना था न कि निर्वाण। चक्रवर्ती धर्मराज के आदर्श को अपनाते हुए अशोक ने जन साधारण के नैतिक उत्थान के लिए अपने धम्म का प्रचार किया ताकि वे ऐहिक सुख और इस जन्म के बाद स्वर्ग प्राप्त कर सकें। अतः इसमें संदेह नहीं कि अशोक सच्चे हृदय से अपनी प्रजा का नैतिक

^६.- झा और श्रीमाली-प्राचीन भारत का इतिहास, पृ.१७७

पुनरुद्धार करना चाहता था और उसके लिए वह निरंतर प्रयत्नशील रहा। वह निसंदेह एक आदर्श को चरितार्थ करना चाहता था। यही अशोक की मौलिकता थी^७।

यदि हम विभिन्न धर्मों का तुलनात्मक अध्ययन करें तो हमें धर्मों की कुछ बातों को छोड़कर जिन्हें हम किसी धर्म की मूलभूत विशेषतायें समझते हैं यथा-:पूजा की पद्धति, देवताओं में भिन्नता, मूर्ति पूजा, एवं एकेश्वरवाद या बहुदेववाद, विभिन्न प्रकार के धार्मिक विश्वास एवं कर्मकाण्ड आदि, को छोड़कर अन्य सभी बातों में समानता नज़र आयेगी। किन्तु मेरे विचार में ये मूल बातें वास्तव में गौण हैं एवं जो मूल है वह है उद्देश्य, इससे प्राप्त होने वाला आध्यात्मिक लाभ व मन की शान्ति। और इस आधार पर कोई धर्म किसी अन्य धर्म से अधिक प्रथक नहीं है और क्योंकि भारत में धर्म का प्रारम्भिक स्वरूप वैदिक धर्म में निहित है इसलिये इसे अन्य धर्मों का जन्मदाता माना जा सकता है।

वैसे धर्म और धम्म में शाब्दिक अर्थ में कोई अंतर नहीं है धम्म, संस्कृत में धर्म का ही प्राकृत रूप है। किन्तु कई इतिहासकारों ने अशोक के धम्म को धर्म नहीं बल्कि एक नैतिक संहिता माना है। किन्तु मेरे विचार से ये विचार हमारी संकीर्णता का ही द्योतक है। इसी संकीर्णता के कारण हमने सीधे तौर पर

^७.- झा और श्रीमाली-प्राचीन भारत का इतिहास, पृ. १८५

यह मान लिया की धर्म का अर्थ है किसी ईश्वर को, किसी महापुरुष को या किसी पैग़म्बर को पूजना, उसको मानना और उसके झूटे, स्वार्थपरता से पीड़ित धर्म के ठेकेदारों द्वारा बताये गये सही अथवा गलत मार्गों पर चलना। इसी कारण हम धर्म के वास्तविक अर्थ एवं उद्देश्य से दूर होते गये जबकि धर्म का साधारण सा अर्थ होता है धारण करना ऐसे तत्वों को जो स्वयं का और साथ ही साथ दूसरों का कल्याण करे एवं इसका उद्देश्य एक ऐसे नीतिगत और सदाचारी मार्ग को प्रस्तुत करना जो मानवमात्र को एक कल्याणकारी और शान्त एवं सुखी जीवन प्रदान कर सके।

‘धर्मवेत्ताओं ने धर्म के तीस लक्षण शास्त्रों में वर्णन किये हैं। उनमें से दया शौच तपस्या उचित-अनुचित का विवेक, तितिक्षा, ब्रह्मचर्य, विषय इन्द्रिय दमन, अहिंसा, त्याग स्वाध्याय, आदि मुख्य हैं। मनुष्य का शनैः-शनैः सांसारिक भोगों से निवृत्त होकर भगवत परायण होना ही मुख्य धर्म है’^८।

यदि हम उपरोक्त लक्षणों की तुलना अशोक के धम्म से करें तो स्वतः ही स्पष्ट हो जायेगा कि अशोक का धम्म मात्र नीतिगत विषयों की सूची नहीं बल्कि एक वास्तविक, सार्वभौमिक, मानवतावादी धर्म है जो किसी भी व्यक्ति के लिए किसी भी देश, किसी भी काल में सदैव और सर्वमान्य होगा।

^८.-<http://www.sukhsagarse.blogspot.com>

हम अशोक के धम्म पर प्रकाश डालें तो पायेंगे कि अशोक ने धम्म के उद्देश्य को कर्म से प्राप्त करने पर बल दिया। उसने मनुष्य को ऐसे कर्म करने हेतु प्रेरित किया जो न केवल स्वयं का कल्याण करे बल्कि दूसरे जीवित प्राणियों का भी उद्धार करें। बड़ों की सेवा, माता-पिता की सेवा, जहाँ तक संभव हो अहिंसा का पालन, सभी सम्प्रदायों का आदर आदि।

अपने दूसरे स्तम्भ-लेख में अशोक स्वयं प्रश्न करता है-:कियं चु धम्मे? अर्थात् धम्म क्या है? इसका उत्तर वह दूसरे और सातवें स्तम्भ लेख में स्वयं दे देता है। वह हमें उन गुणों को गिनाता है जो धम्म का निर्माण करते हैं-
“अपासिनवे बहु-कायाने दया दाने सचे सोचये”^६। “ इस अभिलेख में वह स्वयं से यह प्रश्न करके कि ‘धम्म क्या है’ अशोक वह छः सिद्धान्त बताता है जो धम्म के अन्तर्गत आते हैं। इसमें प्रथम दो ‘अपासिनवे तथा बहु-कायाने’ हैं। अपासिनवे शब्द अप तथा आसिनव के योग से बना है। अप का अर्थ होता है अल्प एवं आसिनव का अर्थ तृतीय स्तम्भ लेख में पाप बताया है। आसिनव स्पष्टतः कायाने अर्थात् कल्याण का विलोमार्थक है। पांचवें शिलालेख में व सातवें स्तम्भ लेख में कायाने का अर्थ पुण्य है। पांचवें शिलालेख में ‘कायाने’ और ‘पाप’ विलोमार्थक शब्दों के रूप में प्रयुक्त भी हैं”^{१०}। इसप्रकार अशोक ने धम्म के छः

६.- डॉ. सहाय शिवस्वरूप-भारतीय पुरालेखों का अध्ययन, पृ.१२३,

१०.- गोयल श्रीराम-प्रियदर्शी-अशोक, पृ.१०२

गुण या लक्षण 'दया, दान, सत्यता, पवित्रता, अल्प पाप और अधिक कल्याण' आदि बताये हैं।

“मनु ने धर्म के दस लक्षण गिनाये हैं:

धृतिः क्षमा दमोस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।

धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणं ॥

धैर्य, क्षमा, संयम, चोरी न करना, पवित्रता, इन्द्रियों को वश में रखना, बुद्धि, विद्या, सत्य और क्रोध न करना ये दस धर्म के लक्षण हैं। इसीप्रकार याज्ञवल्क्य ने धर्म के नौ लक्षण बताये हैं

अहिंसा सत्यमस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।

दानं दमो दया शान्तिः सर्वेषां धर्मसाधनम् ॥

अहिंसा, सत्य, चोरी न करना, पवित्रता, इन्द्रियों को वश में रखना, दान, संयम, दया एवं शान्ति”⁹⁹। यहाँ मेरा उद्देश्य न तो अशोक व इनमें कोई अन्तर बताना है न ही मैं अशोक को इनसे किसी भी प्रकार से प्रभावित मानता हूँ क्योंकि बिना किसी साक्ष्य के ऐसा कहना संभव नहीं बल्कि अशोक, मनु और याज्ञवल्क्य द्वारा बताये गये धर्म के ये लक्षण वास्तव में सार्वभौमिक लक्षण हैं जो पूर्णरूप से धार्मिक संकीर्णताओं से परे हैं। निश्चित रूप

⁹⁹.-Wikipedia ensyclopedia from www.wikipedia.org

से ये तीन पृथक विचारधारायें पृथक होते हुये भी एक दूसरे से समान हैं क्योंकि ये धर्म के वास्तविक और काफी हद तक व्यवहारिक लक्षणों को बताती हैं।

अशोक के प्रथम शिलालेख से स्पष्ट है कि उसके धम्म का एक प्रमुख पक्ष अहिंसा था। वह कहता है “ यहाँ(अर्थात् मेरे साम्राज्य में) कोई जीवित प्राणि मार कर हवन न किया जाये और न कोई समाज किया जाये। देवनांप्रिय प्रियदर्शी राजा समाज में बहुत से दोष देखते हैं। (परन्तु) ऐसे भी कुछ समाज हैं जो देवनांप्रिय प्रियदर्शी राजा के मत में शुभ हैं। पहिले देवनांप्रिय प्रियदर्शी राजा के रन्धनागार में प्रतिदिन बहुत लाख प्राणि सूप के लिए मारे जाते थे। (किन्तु) आज से जब यह धम्म लिपि लिखवाई गई, सूप के लिए केवल तीन ही प्राणि मारे जाते हैं। दो मोर और एक हिरण। वह हिरण भी सदैव नहीं। ये तीन प्राणि भी बाद में नहीं मारे जायेंगे”। इस विषय में कुछ विवाद हैं पहला तो यह कि इस अभिलेख में पशुहत्या का सामान्य निषेध है या मात्र हवन यज्ञ के लिए पशुहत्या किये जाने पर निषेध है और दूसरा यह कि यह निषेध केवल पाटलिपुत्र में ही हुआ था या फिर समस्त साम्राज्य में। इन विवादों को सुलझाने के लिए कुछ स्पष्टिकरण दिये जा सकते हैं।

प्रतीत होता है कि काफी पहले से ही एवं इस काल में भी पशुओं की हत्या यज्ञ और हवन आदि के लिए एवं भोजन हेतु भी काफी मात्रा में होती थी। इसी को देखते हुये अशोक ने इस पर सामान्य निषेध लगाया होगा।

क्योंकि जहाँ एक तरफ तृतीय शि.ले. में वह पशु हत्या निषेध की बात करता है वहीं चौथे शि.ले. में उसने पशु हत्या निषेध के प्रति लोगों में आई जाग्रति को स्वीकारा है। इसके अलावा वह उन पशुओं के लिए भी हत्या निषेध का भी ध्यान रखता है जो अकारण ही संभवतः शौक के लिए मारे जाते थे। इस बात को उसने पांचवें स्तम्भ लेख में उठाया है जिसमें वह उन जीवों की हत्या निषेध की बात करता है जो न तो खाये जाते हैं न ही किसी अन्य उपयोग में आते हैं। अशोक केवल उपदेश या आदेश देकर ही शान्त नहीं होता बल्कि वह कार्यशीलता पर भी ध्यान देता है। दूसरे शिलालेख में वह मानव चिकित्सा के साथ साथ पशु चिकित्सा की एवं सम्बन्धित औषधियों की व्यवस्था करने का आदेश देता है। अतः संभव है कि उसके यह आदेश केवल पाटलीपुत्र के लिए ही नहीं वरन् अपने समस्त साम्राज्य के लिए थे।

अशोक अपने अभिलेखों में केवल धम्म के गुणों की ही बात नहीं करता बल्कि उन्हें व्यवहार में कैसे लाया जाय इसका भी उल्लेख करता है। भण्डारकर महोदय इन्हें संक्षेप में इस प्रकार रखते हैं—: **अनारंभो प्राणानां** (प्राणवान् जंतुओं की अ-हत्या), **अविहिंसा भूतानां** (अस्तित्ववान् जंतुओं को अ-क्षति), **मातरि पितरि सुसूसा** (माता-पिता की शुश्रूषा), **थेर-सुसूसा** (वृद्धों की शुश्रूषा), **गुरुणां अपचिति** (गुरुओं का समादर), **मित संस्तुत-नाटिकानां** **बहमण-समणानां दानं संपटिपति** (मित्रों, परिचितों और संबन्धियों के प्रति तथा ब्राह्मण और श्रमण साधुओं के प्रति उदारता और सम्यक व्यवहार),

दास-भतकम्हि सम्यप्रतिपति (दासों और नौकरों से सम्यक व्यवहार), और सिर्फ एक लेख शिलाप्रज्ञापन ३^{१२} में अप-व्ययता और अपभांडता अर्थात् अल्प व्यय और अल्प संचय।

सब स्थानों और सब कालों हेतु अशोक ने संसार को जो संदेश दिया, यह उसका एक भाग है। यह सामान्य प्रचलित बातों जैसा लगता है पर कितना सरल और स्पष्ट एवं सत्य है। वह हमें दान, दया, मार्दव आदि का व्यवहार करने के लिए कहकर ही संतुष्ट नहीं होता, बल्कि यह भी बताता है कि इन गुणों को कैसे व्यवहार में लाया जाय। वह समस्त प्राणियों के साथ सम्यक व्यवहार करने को प्रेरित करता है, माता पिता एवं वृद्ध जनों का आदर करने को कहता है, समस्त जंतुओं, प्राणियों के प्रति दया एवं अहिंसा का भाव रखने को कहता है, साधु जनों से चाहे वे ब्राह्मण हों या श्रमण उदार व्यवहार करने को प्रेरित करता है, यहाँ तक की नौकरों और दासों से भी सम्यक व्यवहार करने को कहता है।

अशोक ने अधिक व्यय पर भी प्रतिबन्ध लगाने का प्रयास किया। शायद इसी कारण समाजों पर भी प्रतिबन्ध लगाया गया जो कि प्रथम शिलाप्रज्ञापन में वर्णित है। गोयल महोदय ने 'समाज' शब्द का तात्पर्य कुछ इस प्रकार दिया है "समाज जिसे पालि में समज्ज कहते हैं, का अर्थ टॉमस ने

^{१२}.- गोयल श्रीराम-प्राचीन भारतीय अभिलेख संग्रह, पृ.४२

अखाड़ा या खेल का मैदान बताया है व एन. जी. मजूमदार ने 'नाटक अथवा प्रेक्षणक'। किन्तु समाज का अर्थ इनसे कहीं अधिक विस्तृत था। 'अमरकोशटीका' में इसका अर्थ 'निकाय' अर्थात् 'मनुष्यों का सम्मेलन' दिया गया है। 'महाभारत' में इसका उल्लेख एक शैव उत्सव के रूप में हुआ है जिसमें मद्यपान, गायन और नृत्य हुआ करते थे। लौकिक समाज किसी रंगशाला या प्रेक्षागार में आयोजित किये जाते थे जहाँ विभिन्न श्रेणियों और गणों के अलग अलग शिविर लगते थे और मंच बने रहते थे। वहाँ दावतें, मल्ल-युद्ध, गायन, नृत्य, वादन और यहाँ तक की स्वयंवर भी हुआ करते थे। 'अर्थशास्त्र' में कौटिल्य ने एक स्थल पर ऐसे उत्सवों, समाजों और यात्राओं का उल्लेख किया है जहाँ चार दिन तक अबाध रूप से मद्यपान चलता रहता था और अन्य स्थल पर विजेता राजा का कर्तव्य बताया है कि वह विजित जनों के हृदय में उनके देश, देवता, उत्सव, समाज और बिहार आदि के प्रति विद्यमान अनुराग में हस्तक्षेप न करे। वात्स्यायन ने अपने कामसूत्र में सरस्वती के मंदिर में संगीतज्ञों की मासिक अथवा पाक्षिक गोष्ठी को समाज कहा है। एलियन के अनुसार स्वयं अशोक का पितामह चन्द्रगुप्त मौर्य प्रतिवर्ष एक मेले का आयोजन करता था जिसमें भेड़ों, जंगली भैसों, हाथियों, गैडों आदि की प्रतिद्वन्द्विता और दो बैलों से जुते हुये एक घोड़े से खींचे गये रथों की दौड़ होती थी। कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में राजाओं को सलाह दी है कि वे यात्रा, समाज, उत्सव, व प्रवहण से प्रजा का मनोरंजन करें।

इसके टीकाकार के अनुसार 'यात्रा' से आशय है देवताओं की यात्रा, 'समाज' का अर्थ है लोक समुदाय, उत्सव का इंद्रोत्सव तथा वसन्तोत्सव आदि तथा प्रवहण का उद्यान, भोजादि। इस वर्णन से स्पष्ट है कि अशोक के काल में जो समाज होते थे उनमें संगीत, नृत्य, मांस-सेवन, मदिरा-पान, खेल-कूद, तथा विविधप्रकार की प्रतियोगिताओं की प्रधानता रहती थी^{१३}। इन्हीं आधारों पर भंडारकर जी ने समाजों को दो प्रकार का बताया है एक वे जिनमें मांस-मदिरा चलती थी और दूसरे शुद्ध मनोरंजन वाले समाज। अशोक ने शुद्ध मनोरंजन वाले समाजों को जारी रखा और उन्हें अपने धम्म प्रचार का माध्यम बनाया।

भण्डारकर जी का कहना है कि शिलाप्रज्ञापन ६ में वह धम्म या जिसे वह **धम्म मंगल**^{१४} कह कर पुकारता है उसका, सुख प्राप्ति और दुःखनिवृत्ति के लिए किये जाने वाले मंगलों या मंगलकृत्यों से, जो हिन्दु समाज में अशोक के समय भी लाखों थे, मुकाबला करता है। वह उस प्रज्ञापन में कहता है कि : लोग रोगों, विवाहों और पुत्र जन्म पर तथा यात्राओं के समय अनेक मंगल कृत्य करते हैं। पर इस प्रसंग में स्त्रियाँ, अनेक प्रकार के क्षुद्र, बहुत निरर्थक कृत्य करती हैं।

इन बातों से प्रतीत होता है कि अशोक सम्पत्ति के प्रभाव और दुष्प्रभाव से भलि-भाँति परिचित था इसी कारण वह सम्पत्ति के अल्प व्यय

^{१३}.- गोयल श्रीराम-प्रियदर्शी अशोक, पृ.६०-६१

^{१४}.- गोयल श्रीराम-प्राचीन भारतीय अभिलेख संग्रह, पृ-५५

और अल्प संचय की बात करता है और वैसे भी मौर्य साम्राज्य जैसे विशाल क्षेत्र का प्रशासन चलाने के लिए सम्पत्ति के महत्व को समझना आवश्यक था भी। इसी काल में करों की एक विकसित प्रणाली का विकास हुआ एवं ऐसे आय अर्जन के उपयुक्त किये गये जो पहले कभी प्रयोग में नहीं आये थे। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में इनका ब्यौरा मिलता है। इन्हीं कारणों को देखते हुए अशोक ने इस प्रकार के व्यर्थ पूर्ण समाजों पर रोक लगाने का प्रयास किया। एक तरह से अशोक धम्म को ही वास्तविक सम्पत्ति मानता है। उसका मानना है कि इसी से मानव का वास्तविक कल्याण हो सकता है। इसीलिए शिलाप्रज्ञापन ११ में वह सामान्य दान और धम्मदान में वैषम्य प्रस्तुत करता है। वह हमें बताता है कि धम्मदान का उच्चतम रूप एवं इसका अर्थ है किसी को धम्म बताना, धम्म में भाग लेना, और इसप्रकार धम्म से सम्बद्ध हो जाना। इस प्रकार धम्मदान कोई भी किसी को भी कर सकता है—पिता पुत्र को, पुत्र पिता को, भाई एक दूसरे को, और वास्तव में प्रत्येक व्यक्ति अपने पड़ोसी को धम्मदान कर सकता है। अशोक के शिलालेख १३^{१५} में एक शब्द 'धम्म विजय' आया है जिसका अर्थ वह बताता है धम्म द्वारा ऐसी रीति से विजय जिससे कि दूसरों की उन्नति हो। इसमें वह सामान्य विजय और धम्म विजय की आपस में तुलना भी करता है। इस प्रसंग में वह अपनी कलिंग विजय की चर्चा करता है, और बड़े भारी हृदय के साथ और कुछ शर्मसार होकर वह उस युद्ध में हुए भीषण हत्याकाण्ड और उन

^{१५}.- गोयल श्रीराम-प्राचीन भारतीय अभिलेख संग्रह, पृ.-६४-६६

सैनिकों के संबन्धियों को हुए तीव्र दुःख और शोक का उल्लेख करता है। वह कहता है कि प्रत्येक सैन्य विजय के साथ यह क्रूरता पूर्ण कार्य अनिवार्य है। किन्तु जो विजय धम्म से प्राप्त की जाती है वह प्रेम से परिपूर्ण होती है उसमें पर कल्याण की भावना निहित होती है और इसलिए इसे अपने राज्य में ही नहीं बल्कि दूसरे पड़ोसी राज्यों में भी किया जा सकता है।

अशोक के धम्म का एक दूसरा पक्ष है निषेधात्मक और भंडारकर महोदय के अनुसार इसे एक शब्द, **अप-आसिनव**, अर्थात् यथासंभव न्यूनतम आसिनव, में प्रकट किया जा सकता है। पर आसिनव कहते किसे हैं? अशोक इसका उत्तर स्तंभ लेख ३ में देता है जिसमें उसे वह पाप के समकक्ष रखता है और उन हानिकारक विकारों का उल्लेख करता है जिनके परिणामस्वरूप आसिनव होता है। वे हैं-: **चंडिय**(प्रचंडता), **निठुलिय**(निर्दयता), **क्रोधे**(क्रोध), **माने**(घमंड), और **इस्या**(ईर्ष्या)। इस प्रकार अशोक मानता है कि उसके धम्म की पर्याप्त पूर्ति के लिए उसके द्वारा बताये गये कर्तव्यों के पालन के साथ साथ इन विकारों से मुक्त होना भी आवश्यक है। पर वह इतने पर ही संतुष्ट नहीं होता। वह हमें आत्मिक उन्नति का मार्ग भी बताता है और वह है **आत्म-निरीक्षण** का मार्ग। वह अपेक्षा करता है कि धम्म को मानने वाला इस बात को भलि प्रकार से समझ ले कि धम्म की वास्तविक वृद्धि के लिए आत्म-निरीक्षण परमआवश्यक है। अशोक के अनुसार इसका तात्पर्य स्वयं के चरित्र का निरीक्षण न केवल भले कार्यों का बल्कि किये गये पापों का भी। अपने

स्तंभ लेख ३ में वह कहता है कि ' मनुष्य केवल अपने भले काम को देखता है और अपने आप से कहता है कि मैने यह भला काम किया है। वह अपना पाप कभी नहीं देखता और न कभी स्वयं से यह कहता है कि 'मैने यह पाप किया है' या 'यह सचमुच आसिनव है'। इस प्रकार अशोक कहता है कि यह ऐसा मामला है जिसमें आत्म-निरीक्षण करना कठिन है। पर फिर भी मनुष्य को इसका ध्यान रखना चाहिये और सोचना चाहिये कि इस इस तरह के विकारों से आसिनव होता है, और उसके कारण मेरा पतन हो जायेगा।

अशोक का धम्म एक ऐसा धर्म है जिसे कोई भी व्यक्ति बिना किसी शंका या विवाद के अपना सकता है। इसमें किसी प्रकार की गूढ़ या दार्शनिक बातों का उल्लेख नहीं जो कि लोगों को असमंजस में या किसी अवर्णित ज्ञान या विचार में उलझा दे। भण्डारकर जी अशोक के धम्म को सभी धर्मों की साझी सम्पत्ति मानते हैं। वे कहते हैं कि वह हमें जो गुण और आचरण धारण करने के लिए कहता है वे ठीक वही हैं जिन्हें सब धर्म अनुकरणीय बताते हैं। शिलालेख 9३ में वह स्वयं इस बात को स्वीकारता है। उसमें वह कहता है कि 'यवनों को छोड़कर कोई ऐसा देश नहीं जहाँ ब्राह्मण और श्रमण संघ न हों; और कोई ऐसा स्थान नहीं जहाँ लोग किसी न किसी मत को न मानते हों। और वास्तव में, सर्वत्र ब्राह्मणों के, श्रमणों के, और अन्य मत हैं और वहाँ ग्रहस्थ लोग रहते हैं जिनमें वृद्ध-सुश्रूषा, पितृ-सुश्रूषा, गुरु-सुश्रूषा, शिष्ट व्यवहार और मित्रों, परिचितों, साथियों, और संबन्धियों से तथा दासों और भृत्यों से अटल प्रेम

आदि आचरण प्रचलित हैं”। इससे स्पष्ट होता है कि उसका धम्म जो कि कर्तव्य प्रधान है, सब सम्प्रदायों में सामान्य रूप से विद्यमान चीज़ है। और शायद इसीलिए वह स्तम्भ लेख सात^{१६} में कहता है कि ‘ देवताओं के प्रिय राजा प्रियदस्सी यह कामना करते हैं कि सब सम्प्रदाय के लोग सब जगह रहें, क्योंकि सब संयम और भावशुद्धि चाहते हैं लेकिन मनुष्यों की विविध इच्छायें और विविध अनुराग हैं। वे या तो सम्पूर्ण रूप से या केवल एक अंश में इसका पालन करेंगे। जो उदार है किन्तु जिसमें संयम, भावशुद्धता, कृतज्ञता और दृढ़ विश्वास नहीं, वह नीच माना जाता है’। अशोक इसमें लोगों को बताता है कि संयम और भावशुद्धि ऐसे गुण हैं जिनके बिना कोई व्यक्ति अपना उत्थान नहीं कर सकता। इनके बिना समस्त अच्छे कृत्य व्यर्थ हैं। प्रत्येक संप्रदाय इन गुणों की शिक्षा देता है। संभव है कि प्रत्येक व्यक्ति के लिए सभी उपदेशों का पालन करना आसान न हो किन्तु फिर भी इन गुणों का पालन व्यक्तित्व के उत्थान के लिए परम आवश्यक है।

अशोक १२वें दीर्घ शिलालेख में कहता है कि देवताओं के प्रिय राजा प्रियदस्सि विविध दान और सम्मान द्वारा सब सम्प्रदायों का, चाहे वह सन्यासी हैं या ग्रहस्थ, सत्कार करते हैं। लेकिन देवताओं के प्रिय दान और सम्मान को इतना महत्वपूर्ण नहीं मानते जितना इस बात को कि सब सम्प्रदायों में सार की वृद्धि हो। सार की वृद्धि कई तरह से होती है लेकिन इसका मूल

^{१६}.- डॉ. सहाय शिवस्वरूप-भारतीय पुरालेखों का अध्ययन, पृ.१३२-१३३

वाकसंयम है जिससे लोग मौके बेमौके अपने सम्प्रदाय की प्रशंसा और दूसरे सम्प्रदायों की निन्दा न करें या कभी निन्दा हो भी तो संयम के साथ। हर अवसर पर, दूसरे सम्प्रदाय का आदर करना चाहिये क्योंकि ऐसा करने से व्यक्ति अपने सम्प्रदाय की उन्नति और दूसरे सम्प्रदायों का उपकार करता है। इसके विपरीत आचरण करने से वह अपने सम्प्रदाय को नुकसान पहुँचाता है और दूसरे सम्प्रदाय का भी अपकार करता है'।

निश्चित रूप से अशोक भी यह जानता था कि उसका धम्म सभी धर्मों का सार है क्योंकि धर्म चाहे कोई भी हो उन सभी का सार एक ही है। इसलिए यदि हम किसी भी धर्म की बुराई करते हैं तो एक प्रकार से हम अपने ही धर्म को गलत ठहराते हैं। इसीलिए अशोक कहता है कि चाहे ब्राह्मण धर्म हो या श्रमण धर्म दोनों का आदर करना चाहिये क्योंकि दोनों कितने भी भिन्न क्यों न हों उनका सार तो एक ही है। अतः हमें धर्मों का सार समझते हुए अपनी वाणि पर संयम रखना चाहिये और धम्म की सार वृद्धि करनी चाहिये। अशोक कहता है कि “लोग एक दूसरे के धर्म को सुने और भविष्य में सुनने की इच्छा रखें”। क्योंकि इससे सब सम्प्रदायों की जानकारी और ज्ञान में वृद्धि होगी और संसार का कल्याण होगा। इस प्रकार अपने सम्प्रदाय की उन्नति और धम्म का प्रकाश होगा।

अशोक के अनुसार प्रत्येक धर्म के दो पहलू होते हैं

१-: सैद्धान्तिक २-: आचार सम्बन्धि। सैद्धान्तिक पहलू में कर्म-काण्ड और

धार्मिक ग्रन्थों का बौद्धिक विवेचन आता है। जबकि धर्म का आचार सम्बन्धि रूप वह है जो एक समझदार और सच्ची भावना वाला आदमी स्वभावतः करेगा, और यही धर्म का सच्चा रूप है। भण्डारकर महोदय के शब्दों में “ जहाँ तक धर्म के सैद्धान्तिक अंश का प्रश्न है, इसके न केवल विश्वासों के बारे में, बल्कि किये जाने वाले कर्म-काण्डों के बारे में भी विभिन्न और परस्पर विरोधी विचार होना स्वभाविक है। ऐसा अवश्यम्भावी है क्योंकि मानवीय बुद्धि बहुत भिन्न होती है। वर जहाँ तक धर्म के आचार सम्बन्धि पहलू का सम्बन्ध है, उनके नैतिक गुणों और नैतिक आचारों के बारे में, जो हमें अपने व्यवहार में प्रदर्शित करने चाहिये, किसी का कोई मतभेद या विरोध नहीं है, बल्कि पूर्ण मतैक्य है”।

वैसे मेरे विचार में किसी भी धर्म के सैद्धान्तिक पहलू उसके उदभव के काल को प्रतिबिम्बित करते हैं। उस समय के देश-काल की परिस्थितियों में उनका विकास होता है। इस बात को हम वैदिक धर्म, बौद्ध धर्म अथवा मुस्लिम या इसाई धर्म के विकास को देखकर समझ सकते हैं। जबकि आचारीय पहलू में धर्म का उद्देश्य निहित होता है जिसमें मानव के नैतिक आचरण सन्निहित होते हैं और इसलिए यह प्रत्येक धर्म में समान होता है, क्योंकि वह तो सब धर्मों का सार है और वह किसी एक धर्म की संपत्ति नहीं हो सकता। और इसी आधार पर भण्डारकर जी कहते हैं कि “अशोक जिस धर्म की शिक्षा देता है वह वास्तव में यह सार ही है। दूसरी ओर, ज्योंही हम अपनी बुद्धि की लगाम ढीली करते हैं त्योंही कर्म-काण्ड और धार्मिक सिद्धान्तों से

सम्बन्धित प्रश्नों पर अनन्त विवाद करने की गुंजाइश हो जाती है, और अधिकतर यह विवाद निरा शुष्क कलह होता है। इसके कारण ही लोग उपयुक्त अवसर न होने पर भी अपने संप्रदाय की प्रशंसा करते हैं या दूसरों के संप्रदाय की अकारण निन्दा करते हैं--वास्तव में इस मतान्धता के विरुद्ध ही, जैसा की हम देख चुके हैं अशोक ने अपनी शक्तिशाली आवाज़ उठाई”।

